देवभूमि-सौरभम्
Devabhūmisaurabham
Vol 1 Issue 1 January 2024 Devabhūmisaurabham International Journal of CSU Shri Raghunath Kirti Campus Devprayag Uttarakhand India

केदारखंड की ऐतिहासिकता में धार्मिक एवं शौर्य तत्त्व

डॉ. वीरेंद्र सिंह बर्त्वाल
असिस्टेंट प्रोफेसर-हिंदी
(केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, श्री रघुनाथ कीर्ति परिसर, देवप्रयाग, उत्तराखंड)

हिमालयी प्रदेश में स्थित उत्तराखण्ड देवभूमि के नाम से ख्यात है। यहां सनातनियों के चार प्रमुख धाम-बदरीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्तरी और यमुनोत्तरी स्थित हैं। धार्मिक-आध्यात्मिक रूप से समृद्ध इस धरा से अनेक देवी-देवताओं के घनिष्ठतम सम्बन्ध हैं। शिव इस धरती के दामाद बताए जाते हैं। उनसे हिमालय पुत्री नन्दा का विवाह हुआ है। श्रीकृष्ण को यहां नागराजा के रूप में पूजा जाता है, जिनका प्रमुख स्थान (मन्दिर) टिहरी गढ़वाल के सेम-मुखेम में है। उत्तराखण्ड के दो प्रमुख भाग हैं- कुमाऊं और गढ़वाल। गढ़वाल का प्राचीन नाम केदाखण्ड और कुमाऊं का मानसखण्ड था। शिव का एक नाम केदार भी है। बताया जाता है कि गढ़वाल क्षेत्र शिव का प्रिय क्षेत्र है, अतः इसका नाम केदाखण्ड पड़ा। अर्थात् शिव का क्षेत्र। शिव के मन्दिर गढ़वाल में बहुतायत मिलते हैं। यहां स्थानीय क्षेत्रों के नामों के आधार पर शिव का नामकरण कर दिया गया है-लोदेश्वर, नीलचामेश्वर, किलकिलेश्वर, ढुण्डेश्वर इत्यादि। यद्यपि गढ़वाल में शिव के मन्दिर बहुलता के साथ पाये जाते हैं, लेकिन यहां की धार्मिकता मिश्रित स्वरूप वाली है। पूजा पद्धति शैव, वैष्णव, शाक्त मतों से युक्त है। नाथ पंथ का भी प्रभाव यहां की धार्मिक-आध्यात्मिकता पर है। लौकिक देवी-देवताओं का भी श्रद्धा के साथ पूजन होता है, जिनका अपना अनूठा इतिहास है। पहाड़ की संस्कृति प्रकृति से घनिष्ठतम रूप से प्रभावित है। यहां की लोकपरम्पराओं में गहन प्रकृति-प्रेम का सुन्दर प्रतिबिम्बन होता है। मनुष्य पर देवता अतवरण पहाड़ के धर्म क्षेत्र की अनूठी विशेषता है। देवी-देवताओं के चमत्कारों और शक्तियों के समक्ष यहां का मानव नतमस्तक है। गढ़वाली लोकगाथाओं में हमें यहां के धर्म, अध्यात्म, संस्कृति, इतिहास, अर्थ और पर्यावरण की स्पष्ट जानकारी मिल पाती है।

गढ़वाल का इतिहास स्वयं में गौरवमयी है। वेद-पुराण हमें इतिहास के रूप में गढ़वाल के अतीत की जानकारी देने में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। यहां का लोकगाथा साहित्य और अनुश्रुतियां भी हमें गढ़वाल के बीते समय के दर्शन कराते हैं। इन सबसे हमें ज्ञात होता है कि गढ़वाल की धरा धर्म-अध्यात्म के क्षेत्र में बड़ी उर्वरा रही है।

गढ़वाली लोकगाथाएं यहां घटित अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं को आख्यायित करती हैं। उत्खननों से मिले अनेक साक्ष्य इस भूमि को देवताओं की कर्म और शरण स्थली प्रमाणित करते हैं। ब्रह्वर्त, आर्यावर्त, हिमवान, इलावर्त नामों से ख्यात इस केदारखंड की धरती के महत्त्व के दृष्टिगत अनेक देशी-विदेशी विद्वानों और प्रकृति प्रेमियों ने यहां की यात्राएं कीं। अनेक विद्वानों और जिज्ञासु लोगों ने यहां के इतिहास, लोकसंगीत पर शोध किया है। विभिन्न जातियों की कर्मस्थली और अधिवास रहे इस हिमालयी क्षेत्र में इन जातियों ने अपने चिह्न छोड़े हैं, जिनके कारण यहां एक विशेष संस्कृति का अभ्युदय हो गया। ऐसी संस्कृति, जिसमें मनुष्यों को ही नहीं, देवी-देवताओं को भी आकर्षित करने की क्षमता है।

गढ़वाल में प्राचीन काल से कोल, किरात, भिल्ल, तंगण, खस, यक्ष और आर्य जातियों ने निवास किया है। इनके कुछ निशान आज भी गढ़वाल के खान-पान, रहन-सहन और पूजा-पद्धति तथा संस्कारों में विद्यमान हैं।

गढ़वाल की प्राचीन जातियों मे कोल, किरात, पुलिंद, तंगण तथा खस प्रमुख हैं। केदार मंडल खस मंडल से पहले किरात मंडल था।1

प्रागैतिहासिक काल में यह क्षेत्र यक्ष, कोल, किरात, भिल्ल, तंगण, नाग, खस आदि जातियों से संबद्ध रहा है। इन जातियों का उत्तर पाषाणकालीन संस्कृति के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। यही यहां के मूल निवासी थे। खसों और आर्यों के प्रवेश के साथ इनता पराभव होता गया, किंतु इनकी संस्कृति उनको भी ग्रहण करनी पड़ी। गढ़वाल में प्रचलित तंत्र-मंत्र, रखवाली, झाड़फूंक, वृक्ष पूजा की जीववादी प्रवृत्ति तथा व्यक्ति के सिर पर देवता अवतारने की गीत-नृत्यमयी पद्धति को इन्हीं की देन माना जाता है।2

गढ़वाल का धार्मिक एवं राजनीतिक इतिहास समृद्ध और असंदिग्ध है। यहां शिव, कृष्ण, श्रीराम, पांडवों के अतिरिक्त अनेक लौकिक देवी-देवता गढ़वाल के इतिहास में स्थान बनाए हुए हैं। यद्यपि श्रीकृष्ण, शिव, देवी और पांडवों की तुलना में यहां राम को गाथाओं में स्थान नहीं मिला है, किंतु अनेक ऐतिहासिक तथ्य प्रमाणित करते हैं कि श्री राम और सीता का संबंध गढ़वाल से रहा है। डॉ. डबराल की पुस्तक ''उत्तराखंड के पशुचारक'' का संदर्भ देते हुए डॉ. शिवानंद नौटियाल ने लिखा है कि रामचंद्र जी ने वृद्धावस्था में देवप्रयाग में तपस्या की थी। राम का एकमात्र मंदिर यहीं है। देवप्रयाग से मिली हुई पट्टी सितोनस्यूं है। इस पट्टी के फलस्वाड़ी गांव के मैदान में इगास (कार्तिक माह की एकादशी) के दूसरे दिन मनसार का मेला लगता है। मेले की कथा के अनुसार जब राम ने सीता को वन में निर्वासित किया था तो लक्ष्मण सीता को कुटी तक छोड़ आए थे। यह कुटी देवप्रयाग से दो मील पर है। सीता को

छोड़ने पर लक्ष्मण मूर्च्छित हो गए थे। आज भी देवल गांव में लक्ष्मण का मंदिर है। सीता यहीं रहने लगी थी। कोट का महादेव मंदिर तब वाल्मीकि आश्रम था। जब राम का अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा यहां से गुजरा तो लव और कुश ने उसे रोक लिया। राम को आना पड़ा। लव-कुश को उन्होंने अपना लिया और सीता को पुनः साथ चलने को कहा। समीपवर्ती गांव वालों ने सीता को द्रोण कंडी (बेटी को ससुराल विदा करते समय दिया जाने वाला अन्न व अन्य सामग्री) देकर भेजना चाहा। मनसार के पास सीता ने धरती से कहा कि मां यदि मैं पतिव्रता हूं तो मुझे गोद में समा ले। पृथ्वी फट गई। सीता का पृथ्वी प्रवेश इगास के दूसरे दिन हो गया। राम ने सीता के बाल पकड़ने चाहे, परंतु उनके हाथ बाल ही आए। भेजने वालों को उन्होंने अपनी तथा सीता की स्मृति में सीता के बाल दिए। आज भी प्रतिवर्ष लड़की को ससुराल भेजने की पूरा प्रथा के अनुसार समीप के सारे गांव वाले उस दिन द्रोण कंडी व कपड़ा-लता मनसार के मेले में लाते हैं। सितोनस्यूं की देवी सीता ही है। उसी के नाम पर इस पट्टी का यह नाम पड़ा।3

स्वतंत्रता से पहले गढ़वाल में राजतंत्र व्यवस्था थी। यहां की सत्ता छोटे-छोटे गढ़ों मंे विभाजित थी। सत्ताओं के लिए संग्राम होना सामान्य बात थी। गढ़वाल के मध्यकाल पर दृष्टिपात करें तो इसमें सत्ता को लेकर बड़ी उथल-पुथल रही। सामंत दूसरे की सत्ता हथियाने को आतुर रहते थे। सामंतों की इस मृगतृष्णा और होड़ का परिणाम जनता ने भुगता। वह दौर एक प्रकार से संघर्षों का समय था। सामंत अपने राज्य विस्तार एवं दूसरे का राज्य हथियाने की प्रतिस्पर्धा में परस्पर लड़ते रहते थे। तब एक प्रकार से 'शक्तिशाली की पौ बारह' का सिद्धांत लागू था। तब सत्ता और सुरक्षा के लिए शूर-वीरता अनिवार्य थी।

टिहरी रियासत पर पंवार राजाओं का लंबे समय तक शासन रहा।

पंवार शासकों का स्पष्ट इतिहास 1500 ई. से ही मिलता है। इस समय राजा अजयपाल पूरे गढ़वाल पर शासन करने लगे। वह पंवार वंश का 37वां राजा माना गया है। उसने यहां छोटे-छोटे गढ़ों को एक कर उन पर शासन आरंभ किया था। पंवार वंश के अंतिम शासक राजकुमार मानवेंद्र शाह रहे। वे साठवें शासक रहे।4

पंवार वंश के शासन काल में भी गढ़वाल को अपने अस्तित्व के लिए भोट, कुमाऊं, सिरमौर और दिल्ली के शासकों से जूझना पड़ा। गढ़वाल और भोट का संघर्ष तो कत्यूरी शासन के समय ही शुरू हो गया था। पंवार शासन काल में दापा (तिब्बत) के शासक यहां लूट-पाट करते थे। राजा मानशाह ने दापा नरेश को हराकर प्रतिवर्ष एक चौसिंग्या खाडू (मेढ़ा) और सवा सेर सोना देते रहने की संधि की थी।5

गढ़वाल के मध्यकाल पर दृष्टिपात करें तो उस दौर में यहां बिल्कुल भी शांति नहीं थी। राजाओं की महत्वाकांक्षा चरम पर रहती थी। उनमें एक-दूसरे की सत्ता हड़पने की होड़ और स्पर्धा रहती थी। 'शक्तिशाली का साम्ाराज्य' वाले सिद्धांत पर चलने वाली तत्कालीन राजनीति शक्ति प्रदर्शन, अहंकार और शासन विस्तार पर केंद्रित होती थी। राजाओं के आपसी संघर्ष का दुष्प्रभाव जनता पर पड़ना स्वाभाविक था।

देखा जाए तो गढ़वाल का मध्यकाल संघर्षों से सराबोर रहा। कभी संघर्ष सत्ता, सत्ता विस्तार, सत्ता सुरक्षा के लिए होते रहे तो कभी सुंदरियों को लेकर रक्तपात हुए। यही संपूर्ण वर्णन गढ़वाली लोकगाथाओं में है। गढ़वाली लोकगाथाएं लोक में मात्र मनोरंजन का साधन नहीं, अपितु यहां के इतिहास की मौखिक संवाहक एवं साक्षी भी हैं। इनमें यहां के प्राचीन वैभव, सत्ता-संघर्ष, भड़ों के प्रणय-शौर्य के साथ ही कृष्ण, पांडवों जैसे देवताओं के व्यक्तित्व एवं कार्यों का विशद् वर्णन समाहित है।

इतिहास के परिप्रेक्ष्य में इन गाथाओं का अवलोकन किया जाए तो स्पष्ट होता है कि अधिकांश गाथाओं मे वर्णित-उल्लिखित पात्रों-स्थानों के नाम इतिहास से मेल खाते हैं। गाथाओं में वर्णित अनेक घटनाएं इतिहास सम्मत ही हैं। धार्मिक गाथाएं जहां गढ़वाल से श्रीकृष्ण-पांडवों के संबंधों का उद्घाटन करती हैं, वहीं पवाड़े एवं प्रेमगाथाएं मध्यकालीन गढ़वाल के सामंतों, भड़ों की शूरता और प्रणय संबंधों का विवरण प्रकट करती हैं। इनमें तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था एवं विभिन्न राजाओं के परस्पर संबंधों का भी वर्णन मिलता है।

गढ़वाली लोकगाथाओं के अंतर्गत जागरों और पवाड़ों में देवी-देवताओं, भड़ों-वीरों का जो व्यक्तित्व एवं कृतित्व दृष्टिगोचर हुआ है, उसे इतिहास भी व्यक्त करता है। यद्यपि गाथाओं में कुछ घटनाएं इतिहास से कुछ परिवर्तित प्रतीत होती हैं, किंतु सत्य का अंश उनमें भी विद्यमान है। जागरों में पांडवों एवं कृष्ण से संबद्ध अनेक गाथाएं महाभारत वर्णित घटनाओं के समान हैं। विवश, पराजित पांडवों का वन गमन करना, वहां अनेक कष्ट झेलना, कौरवों द्वारा पांडवों के विरुद्ध विभिन्न षड्यंत्र रचना, द्रौपदी का अर्जुन के साथ स्वयंवर पद्धति से विवाह करना, अर्जुन का युद्ध की विभीषिका को लेकर भयभीत होना, कृष्ण द्वारा अर्जुन को युद्ध के लिए प्रेरित करना आदि घटनाएं गाथाओं में महाभारत में वर्णित घटनाओं जैसी ही हैं। अतः अनकी प्रामाणिकता संदिग्ध नहीं हो सकती है।

पांडवों का गढ़वाल से घनिष्ठ संबंध रहा है, यह बात असंदिग्ध है। डॉ. शिवानंद नौटियाल के अनुसार निर्विवाद सत्य है कि पांडवों का गढ़वाल में ही अधिक समय बीता। महाभारत के संभव पर्व का संदर्भ देते हुए उन्होंने उल्लेख किया है कि पांडव बदरीनाथ धाम के पास पांडुकेश्वर में पैदा हुए थे।6 द्रौपदी का जन्म गढ़वाल में ही हुआ और इनका बचपन गढ़वाल में ही बीता।7

श्रीकृष्ण को गढ़वाल में नागराजा के रूप में पूजा और नचाया जाता है। उसकी अनेक गांवों में नृत्यमयी उपासना होती है। नागराजा का प्रमुख स्थान अर्थात् मंदिर सेम-मुखेम (टिहरी गढ़वाल) में स्थित है। नागराजा का एक अन्य पौड़ी गढ़वाल जनपद में देवप्रयाग के निकट डांडा में भी है।

गढ़वाली जागरों में श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व और कृतत्व का वही वर्णन है, जो महाभारत, श्रीमद्भागवत और गीता में है। गढ़वाल क्षेत्र में नागराजा के रूप में पूजित श्रीकृष्ण को अनाथों का नाथ कहा गया है। उन्हें 'राण्यों को रौंसिया, फूलों को हौंसिया' अर्थात् रसिक प्रवृत्ति का दर्शाया गया है।

माधो सिंह भण्डारी को गढ़वाल की लोकगाथाओं में दो कारणो ंसे प्रमुख स्थान मिला है। पहला है यह कि वे टिहरी गढ़वाल के राजा के महान सेनापति थे और दूसरा उनका उदीना नामक सुन्दरी से प्रेम हो गया था, जिससे विवाह कर अपने मलेथा गांव ले आने के लिए उन्होंने अपने गांव में पानी पहुंचाने के

लिए अपने पुत्र की बलि दे दी थी। साहस और त्याग की प्रतिमूर्ति माधो सिंह भण्डारी की ऐतिहासिकता लोकगाथाओं में सुन्दर ढंग से व्यंजित है।

वीर-भड़ माधो सिंह भंडारी की गाथा को ऐतिहासिक पुष्ट करने के लिए माधो सिंह द्वारा बनवाई गई सुरंग अथवा नहर (गूल) आज भी विद्यमान है। माधो सिंह ने कीर्तिनगर के निकट मलेथा गांव में पानी पहुंचाने के लिए कठोर चट्टानों को काटकर यह सुरंग बनाई थी। गाथाओं और जनश्रुतियों मंे वर्णन आता है कि माधो सिंह ने बड़े परिश्रम के साथ सुरंग तो बनाई, परंतु उसमें पानी आगे नहीं गया। उसने सुरंग के स्रोत पर पुत्र बलि दी, तब जाकर पानी आगे गया।

इतिहास साक्षी है कि गढ़वाल के राजा महिपत शाह के शासन काल(1629-1646 ई.) में दापा के सरदार का गढ़वाल की सेना से संघर्ष हुआ था। तब माधो सिंह इस राजा (महिपत शाह) का मंत्री था। माधो सिंह ने दापा नरेश के सैनिकों को खूब खदेड़ा था। उसने तिब्बत और गढ़वाल की सीमा निर्धारित कर वहां मुंडेरे (चबूतरे) चिनवाए थे, जो आज भी सीमा पर मौजूद बताए जाते हैं।8

तीलू रौतेली को गढ़वाल की झांसी की रानी कहा जाता है। छोटी-सी आयु में ही शत्रुओं से युद्ध लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुई तीलू पहाड़ की नारियों के लिए प्रेरणा स्रोत है।

तीलू रौतेली का पवाड़ा भी इतिहास की कसौटी पर खरा उतरता है। कत्यूरियों के अत्याचार का विरोध करते हुए उसने अपने पिता,दो भाइयों, मंगेतर और ससुर की मौत का बदला लेते हुए चार वर्ष तक दस युद्ध लडे थे। उसकी दो सहेलियां भी इन लड़ाइयों में मारी गईं। तीलू ने अंत में विजय प्राप्त कर ली, लेकिन एक शत्रु ने छिपकर तीलू पर प्रहार कर दिया। परिणामस्वरूप वह वीरगति को प्राप्त हो गई।

डॉ. नौटियाल ने लिखा है कि कत्यूरी के राजा धामशाही ने गढ़वाल के राजा मानशाही को पराजित कर खैरागढ़ को अपनी अधीन कर लिया था।.....कत्यूरों के अन्याय से गढ़वाली सरदार दुःखी होकर विद्रोह में जुट गए थे। विद्रोही सरदारों में तीलू का पिता भुपू गोरला भी एक प्रमुख था, जो विद्रोह करते हुए सराई खेत नामक स्थान पर कत्यूरों द्वारा मारा गया। खटली के कांडा (जहां अब ऐतिहासिक मेला लगता है) नामक स्थान पर भुपू के दोनों बेटे भी मारे गए। तीलू तब पंद्रह वर्ष की थी।9

गढ़ू सुमरियाल/गढ़ु सुम्याल/ हंसा कुंवर/क्षेत्रपाल के पवाड़े में भी ऐतिहासिक प्रामाणिकता है। गढ़ु सुमरिया की भिन्न-भिन्न गाथाओं में कुछ पात्रों के नाम यद्यपि अलग-अलग हैं, लेकिन कथानक में समानता है।

बहन की ननद के प्रेम में उन्मत हुए जीतू बगड्वाल ने इस प्रेम की कीमत प्राण देकर चुकायी। जीतू की प्रतिज्ञा, त्याग और समर्पण से युक्त उसकी गाथा निश्चल प्रेम की दर्दीली अभिव्यक्ति है।

जीतू बगड्वाल का पवाड़ा प्रणय संबंधों के साथ इतिहास को भी इंगित करता है। जीतू की गाथा में उसके राजा मानशाह से संबंध होने का वृतांत है। मानशाह ने उसे कमीण का जामा दिया था। राजा ने एक बार चिट्ठी लिखकर उसे राजधानी श्रीनगर बुलाया और अपना दीवान नियुक्त किया था। इतिहास में मानशाह का शासन काल 1591 से 1610 ई. तक उल्लिखित है।10

गंगू रमोला की गाथाओं के नायक गंगू रमोला का संबंध द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण से जोड़ा गया है। उसका काल (1325-1425 ई.)11 बताया गया है।

सारांशतः ऐतिहासिक आलोक में यदि गढ़वाली लोकगाथाओं पर दृष्टिपात करें तो स्पष्ट होता है कि इनमें कल्पना-कला के साथ ऐतिहासिक तत्त्व एवं तथ्य भी समाविष्ट हैं। गाथाएं धार्मिक अनुष्ठान-आयोजन का भाग होती हैं और इनका उद्देश्य मनोरंजन होता है, इसलिए गाथाकारों ने कभी इनके ऐतिहासिक तथ्यों की ओर ध्यान नहीं दिया है। परिणामस्वरूप अनेक गाथाओं का ऐतिहासिक आवरण धूमिल हो चुका है, किंतु इनकी आत्मा से ऐतिहासिकता विलुप्त नहीं हुई है। कहा जाना चाहिए कि गढ़वाली लोकगाथाओं में वास्तविक घटनाओं, पात्रों, स्थानों संबंधी तथ्य जोड़ने के उपरांत उनमंे कल्पना, अत्युक्ति, स्थानीयता, कला का आवरण ओढ़कर लोकमानस तक पहुंचाया गया है। गढ़वाल के अतीत पर दृष्टिपात करें तो स्पष्ट होता है कि यहां के लोगों का साहस, त्याग, समर्पण, परिश्रम और प्रेम श्लाघनीय था। उनमें ंहार्दिक निश्छलता थी। गढ़वाल की गाथाएं हमारे इतिहास, धर्म, संस्कृति और अध्यात्म की सच्ची प्रस्तोता हैं। इनके माध्यम से हमें प्राचीन और आधुनिक गढ़वाल की तुलना करने में सरलता होती है। ये गढ़वाल के लोगों के मनोविज्ञान की सच्ची प्रस्तोता हैं।

संदर्भ

1.राहुल सांस्कृत्यायनः हिमालय परिचय, पृ-51

2.डॉ. गोविंद चातकः गढ़वाली लोकगाथाएं (सामान्य परिचय)

3.डॉ. शिवानंद नौटियालः गढ़वाल के लोकनृत्य-गीत, पृ-18 (भूमिका भाग)

4.पं. हरिकृष्ण रतूड़ीः गढ़वाल का इतिहास, पृ-194 (संपादक-डॉ. यशवंत सिंह कठोच)

5.डॉ. रणवीर सिंह चौहानः उत्तराखंड के वीर भड़, पृ-259

6.डॉ. शिवानंद नौटियालः गढ़वाल के लोकनृत्य-गीत, पृ-19 (भूमिका)

7.गोविंद प्रसाद नौटियालः तपोभूमि बदरिकाश्रम, पृ-20

8.हरिकृष्ण रतूड़ीः गढ़वाल का इतिहास, पृ-185

9. डॉ. शिवानंद नौटियालः गढ़वाल के लोकनृत्य-गीत, पृ-198

10. पं. हरिकृष्ण रतूड़ीः गढ़वाल का इतिहास, पृ-207 (संपादक-डॉ. यशवंत सिंह कठोच)

11..डॉ. रणवीर सिंह चौहानः उत्तराखंड के वीर भड़, पृ-77